International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(1): 199-202

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(1): 199-202
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 07-12-2022
Accepted: 07-01-2023

Hrushikesh Padhan
Research Scholar, Department of Sanskrit, Jamia Millia Islamia University, New Delhi 25, Delhi, India

Corresponding Author:
Hrushikesh Padhan
Research Scholar, Department of Sanskrit, Jamia Millia Islamia University, New Delhi 25, Delhi, India

प्राचीन भारत में नगर योजना (कौटिलीय अर्थशास्त्र के विशेष सन्दर्भ में)

Hrushikesh Padhan

सारांश
प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में आज की अपेक्षा कई मामलों में उन्नतशील अवस्था में थे। यह पाण्डुलिपियों के माध्यम से हमें ज्ञात होता है। राजनायिक सम्बन्धित अनेक आचार्य हुए हैं, उनमें विदुर, शुक्राचार्य, मनु, चाणक्य आदि प्रसिद्ध हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र भी इसी क्रम में है कि राजा को किस प्रकार की सुरक्षा आवश्यक है। उसे किस प्रकार के राजगृह का निर्माण कराना चाहिये, कैसे अन्तःपुर हों, मुख्यद्वार और सामान्य द्वार कैसे हों, दीवार का निर्माण में कौन सी वस्तु का उपयोग करना चाहिए इत्यादि। कौटिल्य अर्थशास्त्र राजनीति विज्ञान के साथ–साथ वास्तुकला के दृष्टि से भी वैज्ञानिक प्रमाणित होता है। राजा को सुरक्षा देने में वास्तुशास्त्र के प्रयोग को उत्तम ढंग से वर्णन किया गया है।

कूट शब्द नगरयोजना, गृहनिर्माण, भवन, वास्तुकला, कौटिल्यार्थशास्त्र

प्रस्तावना
नगर योजना वास्तुशास्त्र का अभिन्न अंग है। पुरातात्विक तथा साहित्यिक स्रोतों से भारतवर्ष में नगरों को सुयोजित रूप से स्थापना होने का प्रमाण मिलते हैं। प्राक् सैन्धव समय में नगरों के योजनाबद्ध रूप से निर्माण के लक्षण दिखाई देते हैं। कालीबंगा की प्राक् सैन्धव बस्तियों में किलेबन्दी तथा भवनों के योजनाबद्ध निर्माण के कुछ प्रमाण उपलब्ध हैप् सिन्धु सभ्यता की तो यह प्रमुख विशेषता ही रही है। सिन्धु सभ्यता के नगर और कस्बे योजनाबद्ध तरीके से बसे हैं। इनमें बहुत कुछ में समानता होने पर भी कुछ अपवाद रूप में स्थानीय विशेषता है। प्रमुख पुरास्थलों से पूरब एवं पश्चिम दिशा में दो टीले मिले हैं। इनमें पूर्व टीले पर नगर क्षेत्र बसे हैं, जबकि पश्चिमी टीले पर दुर्ग के होने का प्रमाण मिलते हैं। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो तथा कालिबंगा में दुर्ग और नगर क्षेत्र चहारदीवारी से युक्त थे। उपर्युक्त से भिन्न लोथल एवं सुरकोटड़ा में अलग–अलग दो टीले नहीं मिले। इन दोनों नगरों के सम्पूर्ण क्षेत्र एक ही रक्षा दीवार से घिरे थे। इनसे भिन्न धौलावीरा की अपनी अलग ही तरीके की नगर–योजना थी, यह नगर तीन मुख्य भागों में बंटा हुआ था, जिसमें दुर्ग भाग, मध्यम नगर भाग एवं निचला नगर भाग सम्मिलित था। ये तीनों भाग एक ही रक्षा किले से घिरे हुए थे।
नगरों में सड़कों की समुचित योजना थी। सडकें प्रायः आपस में समान कोण पर काटती थी जो कि नगर को कई खण्डों में बांटती थी। कुछ मार्ग बहुत चौडी तो कुछ बहुत छोटी, कुछ तो संकरी गली जैसी थी। मोहनजोदड़ो की मुख्य सड़क लगभग 10 मीटर से अधिक चौडी थी। यहाँ गलियाँ 1.0 मीटर से 2.2 मीटर तक चौड़ी मिली। सड़कों एवं गलियों में जल एवं मल निष्कासन हेतु पक्की ईंटों से बनी ढकी नालियाँ सिन्धु नगरयोजना अद्भुत होने के कारण इसकी विशेषता मानी जाती है।
नगर एवं दुर्ग क्षेत्र में विभिन्न आकार प्रकार के भवन मिले हैं । भवन निर्माण में पक्की ईंटों का प्रयोग हुआ है। यद्यपि कालीबंगा, लोथल एवं रंगपुर में कच्ची ईंटों तथा धौलविरा एवं सुरकोटडामें भवन निर्माण में प्रस्तरों का भी प्रयोग दिखता है। 10 ईटें विभिन्न आकार– प्रकार की प्रयुक्त हुयी हंग परन्तु सामान्य आकार 27.94 सेमी, 13.97 सेमी, 6.35 सेमी की हैं। इमारतों के कोनों की चिनाई हेतु अंग्रेजी के एल आकार की ईंटों का तथा कुओं एवं मेहराबों के निर्माण में फन्नीदार ईंटों का प्रयोग उल्लेखनीय है।

वैदिक काल के संरचना

वैदिक काल में भी नगरों की सुरक्षा हेतु उन्हें प्राचीरों से घेरने का प्रचलन रहा। ऋग्वेद में असुरोंके सुदृढ पुर जिसे अधिकांश विद्वान दुर्ग जैसे नगर निर्माण के द्योतक मानते हैं, अनेक बार उल्लेख हैं। एक स्थल पर पुरों को अश्वन्मयी कहा गया। एक स्थल पर अग्नि से प्रार्थनाकी गई कि वे मनुष्यों की रक्षा के लिए ऐसी पुरी का निर्माण करे जो अजेय एवं सौ स्तम्भों वाले हो[1]। अन्यत्र उनके 100 द्वार (शतदुर) का उल्लेख भी मिलता है[2]। ऋग्वेद में सहस्रथूण प्रासादों का वर्णन भी हुआ है[3], जो राजभवन के सभा मण्डप जैसी वास्तु संरचना जान पड़ती है[4]। अष्टा– ध्यायी में उल्लिखित कतिपय सूत्र भी इस ओर संकेत देते हैं कि उस समय नगरों का सन्निवेश दुर्ग के रूप में होता था। पाणिनि के सूत्र 5.1.16 में नगर निर्माण के लिए सामग्री एकत्र करने तथा सूत्र द्वारा भूमि माप का संकेत है। एक सूत्र में प्रयुक्त ''परिखाया ढञ्'' शब्द नगर निवेश करते समय दुर्ग के चारों ओर परिखा निर्माण की प्रक्रिया का संकेत करता है। यहां प्राकार शब्द नहीं मिलता 'देवपथ' शब्द यहाँ अवश्य मिलता है, जो कि अर्थशास्त्र के अनुसार प्राकार का ही एक हिस्सा है[5]।

अर्थशास्त्र मे वर्णित

अर्थशास्त्र के जनपदनिवेश (दूसरा अधिकरण, प्रकरण 17 अध्याय 1) में विविध प्रकार के बस्तियों का वर्णन मिलता है। ये हैं ग्राम, स्थानीय, द्रोणमुख, कार्वटिक एवं संग्रहण। ग्राम निवेश सम्बन्धी विविध सैद्धान्तिक बातों को यहाँ आचार्य कौटिल्य ने विस्तार दिया है। राज्य में सर्वाधिक महत्त्व पूर्ण स्थान राजधानी की होती थी, क्योंकि यहां राजा का निवास था, अतः इसकी सुरक्षा का विशेष ध्यान रखना स्वाभाविक था। राजधानी की स्थिति ऐसी होनी चाहिए जो प्राकृतिक दृष्टि से सुरक्षित हो। इस प्रसंग में आचार्य ने चार प्रकार के प्राकृतिक दुर्गों की चर्चा की है साथ ही अन्य विशेष नगर भी होते थे। सभी नगरों के दुर्गों को सुरक्षा कर पाना किसी भी राजा के लिए असम्भव था। फलतः अर्थशास्त्र के 'दुर्गविधानम् प्रकरण' (द्वितीय अधिकरण, प्रकरण 19 अध्याय 3) में नगरों के सुरक्षा सम्बन्धी दिशा–निर्देश विशेष महत्वपूर्ण है। नगरों की आन्तरिक योजना दुर्गनिवेश (द्वितीय अधिकरण, प्रकरण 20 अध्याय 4) का प्रतिपाद्य विषय है। निशान्तप्रणिधि (प्रथम अधिकरण, प्रकरण 15 अध्याय 19) में राजप्रासाद तो सन्निधातृ निचयकर्म प्रकरण (द्वितीय अधिकरण, प्रकरण 21, अध्याय 5) में कोष्ठागार, कोषागार जैसे महत्त्वपूर्ण भवनों के वास्तुगत स्वरूपों को निर्देशित किया गया है जबकि तृतीय अधिकरण के चौसठवें प्रकरण में सामान्य आवासीय भवनों के सन्दर्भ में दिशा–निर्देश दिए गए हैं।

चार प्रकार के दुर्ग

दुर्ग विधानम्' में नगरों की सुरक्षा सम्बन्धी उपाय वर्णित हैं। यहाँ कौटिल्य ने राजधानी नगर के निर्माण के सम्बन्ध में तथा शत्रु से उसकी रक्षा करने के लिए नगर सीमा के चारों ओर नाना प्रकार के दुर्गों के निर्माण का विधान किया है। उन्होंने 4 प्रकार के प्राकृतिक दुर्ग का उल्लेख किया है।

१. औदक दुर्ग २. पार्वत दुर्ग ३. धान्वन दुर्ग ४. वन दुर्ग[6]

उपर्युक्त चारों प्रकार के प्राकृतिक दुर्गों के अतिरिक्त आचार्य ने धनोत्पादन के मुख्य केन्द्र बड़े–बड़े स्थानीय कोटि के नगरों के निर्माण का विधान किया है जो निम्नवत् है –

1. वास्तु विद्या के विद्वानों की सहायता से किसी नदी के संगम पर बड़े तालाब के किनारे या कमल युक्त जलाशयों के तट पर नगर बसाये जा सकते हैं।
2. नगर की योजना सुविधानुसार, गोल, लम्बी अथवा चौकोर बनायी जा सकती है। परन्तु आवश्य– क यह है कि नदी के चारों ओर छोटी–छोटी नहरों द्वारा पानी का प्रबन्ध अवश्य किया जाय।
3. उसके इधर–उधर की भूमि में पैदा होने वाली बिक्री योग्य वस्तुओं का संग्रह तथा उनके विक्रय का प्रबन्ध भी वहाँ होना चाहिए।
4. नगर में आने–जाने के लिए जल मार्ग अथवा स्थल मार्ग दोनों की सुविधा होनी चाहिए[7] ।
5. नगर निर्माण के समय आचार्य कौटिल्य ने जल की उचित आपूर्ति एवं मार्गों का समुचित प्रबन्ध को विशेष बल दिया है। जल आपूर्ति एवं मार्ग प्रबन्धन पूर्व से ही नागर के बस्तियों की अनिवार्य शर्तें रही है।

कौटिल्य ने इन नगरों की सुरक्षा के विषय में जो दिशा–निर्देश दिया है, उन्हें संक्षेप मे यहाँ उल्लिखित किया जा रहा है ।

1. नगर के चारों ओर एक–एक दण्ड (4 हाथ) की दूरी पर क्रमशः चौदह, बारह और दस दण्ड चौडी तीन परिखाओं (खाइयाँ) खुदवानी चाहिए।
2. खाई जितनी चौड़ी होगी उससे चौथाई अथवा आधी गहरी होनी चाहिए।
3. खाइयों की तलहटी बराबर चौरस एवं मजबूत पत्थरों से बन्धा हुआ हो ।
4. उनकी दीवारें पत्थर अथवा ईंटों से मजबूत बनी हुई हों।
5. उनमें जल निकालने का मार्ग अवश्य होना चाहिए।
6. खाइयों में कमल के फूल तथा मगरमच्छ आदि रहने चाहिए।
7. खात से चार दण्ड की दूरी पर छः दण्ड ऊँचा, सब ओर से मजबूत और ऊपर की चौड़ाई से दुगुनी नींव वाला बनाना चाहिए ।
8. दीवार की ऊँचाई अधिक से अधिक चौबीस हाथ होनी चाहिए।
9. इस दीवार का ऊपरी भाग इतना चौड़ा होना चाहिए जिस पर एक रथ आसानी से चलाया जा सके ।
10. बड़े बड़े शिलाखण्डों से प्रकार का निर्माण करवाना चाहिए। लकड़ी का प्राकार कभी भी नहीं बनवाना चाहिए, क्योंकि इसमें सदा आग लगने का भय बना रहता है।
11. प्राकार के आगे ऐसी अट्टालिका (बुर्ज) बनवाए जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई प्राकार के बराबर हो। इस पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ भी बनवानी चाहिए। ये अट्टालिकाएँ एक दूसरी से ती सदण्ड की दूरी पर हों।
12. दो अट्टालिकाओं के बीच 'प्रतौली' नामक रचना तथा अट्टालिका और प्रतोली के बीच में इन्द्रकोश नामक विशिष्ट स्थान हो जहाँ से धनुर्धारी बाहर की वस्तु देख सकें तथा भीतर से ही निशाना बाँध सकें किन्तु बाहर के लोग उन्हें न देख सकें।
13. प्राकार के साथ ही एक देवपथ (गुप्त मार्ग) बनाने का भी परामर्श यहाँ दिया गया है।
14. प्राकार का मुख्य दरवाजा इतना बड़ा हो कि जिसमें चार हाथी एक साथ प्रवेश कर सकें। इसके अतिरिक्त अन्य द्वारों के विधान भी कौटिल्य देते हैं।
15. प्राकार की बाहरी भूमि में शत्रुओं के घुटनों को तोड़ देने वाले लौह कंटक के ढेर, लोहे के जाल, कीलें आदि बनाकर दुर्ग के मार्ग को पाट देना चाहिए[8] ।

अर्थशास्त्र में नगर बस्ति योजना एवं दुर्ग सन्निवेश सम्बन्धी विस्तृत सामग्री उपलब्ध है। इसके 'दुर्ग निवेश' प्रकरण में नगर बस्ति योजना के विषय में विस्तार से वर्णन प्राप्त होते हैं। तदनुसार–

1. वास्तु शास्त्रकारों के निर्देशानुसार जिस भूमि को नगर निर्माण के लिए चुना जाय उसमें पूर्व से पश्चिम की ओर और उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाले तीन–तीन राजमार्ग हो। इन छह राजमार्गों में नगर, बस्ति या गृह–निर्माण की भूमि का विभाजन करना चाहिए। इसमें कुल मिलाकर 12 द्वार हों।
2. नगर में चार दण्ड (24 फीट) चौडि रथ्याएँ हो, राजमार्ग, द्रोणमुख (चार सौ ग्राम का मुख्य केन्द्र), स्थानीय (800 ग्रामों का केन्द्र), राष्ट्र, चारागाह, संयानीय, व्यापारी मंडियां, सैनिक

छाव नियाँ, शमशान और ग्रामों की ओर जाने वाली सभी सड़कों की चौड़ाई आठ दण्ड होनी चाहिए, जलाशयों तथा जंगलों की ओर जाने वाली सड़कों की चौडाई चार दण्ड होनी चाहिए। हाथियों के आने जाने का मार्ग और खेतों को जाने वाला मार्ग दो दण्ड चौड़ा होना चाहिए। रथों के लिए और पशुओं के चलने का रास्ता दो दण्ड चौड़ा होना चाहिए। मनुष्य तथा भेड़ बकरी इत्यादि छोटे पशुओं के लिए एक दण्ड चौड़ा रास्ता होना चाहिए ।

3. नगर के सुदृढ़ भाग में राजभवन का निर्माण कराना चाहिए। गृह भूमि के बीच से उत्तर की और नवें हिस्से में अन्तःपुर (राजभवन) का निर्माण करना चाहिए जिसका द्वार पूर्व या उत्तर में हो
4. इसके पूर्वोत्तर भाग में आचार्य, पुरोहित के भवन, यज्ञशाला, जलाशय और मन्त्रियों के भवन, रसोईघर, हस्तिशाला और भण्डार हों। उसके आगे पूर्व दिशा में इत्र, तेल, पुष्पहार, अन्न, घी, निवास स्थान होने चाहिए।
5. दक्षिण–पूर्व दिशा में भण्डागार, राजकीय पदार्थों के आय–व्यय का स्थान और सोने–चाँदी की दुकाने होनी चाहिए।
6. इसी प्रकार दक्षिण पश्चिम दिशा में शस्त्रागार और अन्य वस्तुओं को रखने का स्थान होना चाहिए।
7. उनके आगे दक्षिण दिशा में नगराध्यक्ष, व्यापाराध्यक्ष, खदानों तथा कारखानों के निरीक्षक, सेनाध्यक्ष, शराब एवं मांस की दुकानें, वेश्या, नट और वैश्य आदि के निवास स्थान होने चाहिए।
8. पश्चिम दक्षिण भाग में ऊँटों तथा गधों के स्थान (तबेले) तथा व्यापार के लिए अस्थाई घर का निर्माण कराया जाय।
9. पश्चिम उत्तर भाग में रथ और पालकी आदि सवारियों को रखने का स्थान होने चाहिए।
10. इसके आगे पश्चिम दिशा में ही ऊन, सूत, बाँस और चमड़े का कार्य करने वाले हथियार और उनके म्यान बनाने वाले और शूद्रों को बसाना चाहिए।
11. उत्तर पश्चिम में राजकीय पदार्थों को बेचने खरीदने का बाजार और औषधालय होना चाहिए।
12. उत्तर–पूर्व में कोषगृह और गाय, बैल तथा घोड़ो के रहना चाहिए। उत्तर दिशा की ओर नगर देवता, कुल देवता, लुहार, मनिहार और ब्राह्मणों के स्थान बनवाने चाहिए। नगर की ओर–छोर जहाँ खाली जगह छूटी है, धोबी, दर्जी, जुलाहे और विदेशी व्यापारियों को बसाया जाए।
13. दुर्गा, विष्णु, जयन्त, इन्द्र, शिव, वरुण, अश्विनी कुमार, लक्ष्मी आदि देवताओं की स्थापना नगर के बीच में करनी चाहिए। कोष्ठागार आदि में भी कुल देवता या नगर देवता की स्थापना करनी चाहिए। चारों दिशाओं के मुख्य प्रवेश द्वार पर अधिष्ठातृ देवता की स्थापना हो। उत्तर का देवता ब्रह्मा, पूर्व का इन्द्र, दक्षिण का यम और पश्चिम का कुमार होता है।
14. नगर की परिखा के बाहर कुछ दूरी पर चौत्य, पुण्यस्थान, उपवन और सेतुबन्ध आदि स्थानों की रचना और यथास्थान दिग्देवताओं की भी स्थापना की जाए। नगर के उत्तर में श्मशान होना चाहिए। दक्षिण दिशा में निम्न जाति के लोगों का श्मशान हो । पाषण्डों और चाण्डालों का निवास स्थान श्मशानों के ही समीप बनवाया जाए।
15. नगर में बसने वाले परिवारों को उनके अध्यवसाय और उनके योग्य भूमि को देखकर ही बसाया जाये[9]।

नगर के विविध हिस्सों में कोषगृह, कोष्ठागार, पण्यगृह, कुप्यगृह (अन्नागार), शस्त्रागार एवं कारागार जैसे महत्त्वपूर्ण भवनों के निर्माण का सन्दर्भ भी अर्थशास्त्र में मिलता है। सन्निधातृ निचयकर्म प्रकरण में उनके वास्तुगत स्वरूप के विषय में निर्देश दिए गए हैं। साथ ही साधारण गृह निर्माण सम्बन्धी कतिपय दिशानिर्देश भी अर्थशास्त्र के वास्तुगत गृहवास्तुकम् प्रकरण में वर्णित है। इस लेख में विषय विस्तार के भय उन विषयों का वर्णान नहीं किया गय है, प्रसंगमात्र से यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि साधारण गृह निर्माण के सन्दर्भ में भी कौटिल्य अर्थशास्त्र में जो मानक दिए गए हैं वे वर्तमान समय में भी पूर्णतः अनुकरणीय है[10]।

निशान्त प्रणिधि

जैसा कि ऊपर वर्णित है कि आचार्य ने नगर सन्निवेश का प्रारूप राजप्रासाद को केन्द्र में रख कर निर्धारित किया। 'निशान्त प्रविधि' नामक प्रकरण में उन्होंने राजप्रासाद के वास्तुगत स्वरूप के सम्बन्ध में दिशानिर्देश दिया है। क्योंकि आचार्य की मुख्य चिन्ता राजा की सुरक्षा को लेकर थी अतः वे राजप्रासाद तथा उसमें भी राजा के महल के रक्षा के उपायों के प्रति बड़े सजग दिखते हैं। उनके अनुसार अन्तःपुर (यहाँ अभिप्राय राज प्रासाद से हैं) का अपना स्वतंत्र प्राकार हो। मध्य में राजा का महल हों जिसकी दीवारों तथा गलियों का पता न लगे। इसके बीच में राजा के रहने का निवास बनवायी जाए जिसमें आने–जाने के लिए गुप्त सुरंगे हाँ या तो फिर ऐसा महल बनवाये जाएँ जिसकी दीवारों के भीतर गुप्त मार्ग हो, खम्भों के भीतर आने जाने अथवा चढ़ने उतरने का रास्ता हो अथवा संकट के निवारण के लिए यंत्रों के आधार पर ऐसा वासगृह बनवाये जिसको इच्छानुसार नीचे ऊपर तथा इधर उधर हटाया जा सकें। यदि राजा को इस बात की संज्ञान हो कि उसके समान ही दूसरे शत्रु देश के राजा भी वास्तुकलाविद् है और उसे गुप्तभवननिर्माण सम्बन्धी सभी रहस्यों का ज्ञान है तो वह अपनी बुद्धि के अनुसार उसमें परिवर्तन कर दे।

यहाँ अग्नि शमन का उचित प्रबन्ध हो । राजा के निवास स्थान के पीछे रनिवास, उसके समीप ही प्रसूता बीमार तथा असाध्य रोगिणी स्त्रियों के लिए अलग–अलग तीन आवास बनवाये जाएँ और उन्हीं के साथ छोटे छोटे उद्यान एवं सरोवरों का का निर्माण किया जाए। बाहार की ओर राजकुमारियों और युवक राजकुमारों के लिए स्थान बनवाये जाएँ। राजमहल के आगे हरी हरी घास और फूलों से सजे हुए उपवन होने चाहिए। उसके बाद मन्त्रसभा का स्थान, फिर दरबार और तदन्तर राजकुमार समाहर्ता सन्निधाता आदि अध्यक्षों के प्रधान कार्यालय होने चाहिए[11]।

निष्कर्ष

इस प्रकार अर्थशास्त्र में नगर योजना विषयक विविध पक्षों का अवलोकन के उपरान्त निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आचार्य ने इस सम्बन्ध में जो भी सुझाव दिये हैं वे पूर्व परम्पराओं पर ही आधारित। कौटिल्य ने नगर योजना में नगरों की सुरक्षा को सबसे पहले प्राथमिकता दी । नगर निवेश के अन्तर्गत विविध वास्तु–संरचनाओं एवं पुर वासियों के वर्ण एवं जातिगत भेद के आधारपर स्थान निर्धारण करते समय आचार्य ने उनके प्रकार्यात्मक उपयोगिता को विशेष महत्त्व दिया। चूंकि नगर राज्य के शौर्य प्रदर्शन का एक माध्यम भी होता था अतः उनके नगरके वास्तु विषयक सन्दर्भों में भव्यता सर्वत्र दिखती है। अर्थशास्त्र में वर्णित नगर वास्तु सम्बन्धि ये परम्परा आगे भी चलती रही। भले ही विशुद्ध रूप से वास्तु शास्त्र सम्बन्धी ग्रंथ मौर्य काल के कई शताब्दियों बाद लिखे गये, परन्तु अन्य साहित्य में बिखरे हुए वास्तु शास्त्रीय शब्दों से इस तथ्य की पुष्टि अवश्य होती है।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद– ४.३०.२०
2. ऋग्वेद–७.२५.२४
3. ऋग्वेद– १०.६६.३
4. ऋग्वेद– २.४१.५
5. पाणिनिकालीन भारतवर्ष(अष्टाध्यायी का सांस्कृतिक अध्ययन) अग्रवाल वासुदेवसरण, पृ.१४२–१४३
6. कौटिल्य अर्थशास्त्र, गौरेला वाचस्पति – पृ ८५
7. कौटिल्य अर्थशास्त्र, गौरेला वाचस्पति– पृ ८६

8. कौटिल्य अर्थशास्त्र, गौरेला वाचस्पति– पृ ८६–६०
9. कौटिल्य अर्थशास्त्र, गौरेला वाचस्पति– पृ ६१–६४
10. कौटिल्य अर्थशास्त्र, गौरेला वाचस्पति– पृ ६५–६६,२८६–२८७
11. कौटिल्य अर्थशास्त्र, गौरेला वाचस्पति– पृ ६५–६७